

## अठारहवीं सदी के पूर्वार्ध में उत्तर भारत

औरंगजेब की मृत्यु (1707) के बाद के दौर में अमीरों के बीच गुटबंदी बढ़ती चली गई, मुगल शहंशाह की शक्ति और प्रतिष्ठा का तीव्र हास हुआ, जागीरदारी प्रथा का संकट और घनीभूत हुआ, एवं क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ, जो या तो मुगल साम्राज्य से टूटकर अलग हुए सूबे थे या मुगल शक्ति को चुनौती देकर स्वतंत्र स्थिति प्राप्त कर लेने वाले ऐसे राज्य थे जो शहंशाह को बरायनाम वफादारी देने को तैयार थे। महाराष्ट्र की सीमाओं से निकलकर मराठों ने कई क्षेत्रीय राज्य कायम कर लिए और अखिल भारतीय स्तर पर अपना वर्चस्व स्थापित करने के प्रयत्न में जुट गए, जिसकी चरम परिणति 1761 में पानीपत की तीसरी लड़ाई में हुई। नादिर शाह तथा अहमद शाह अब्दाली के आक्रमणों से विदेशी हमलावरों के लिए देश के पश्चिमोत्तर हिस्से का द्वार खुल गया। 1748 में मुहम्मद शाह की मृत्यु के बाद मुगल शहंशाह अपने विगत वैभव का एक साया मात्र बनकर रह गया, यद्यपि उसके प्रति नाम-मात्र की निष्ठा अब भी व्यक्त की जाती रही।

### बहादुर शाह प्रथम और वज़ारत के लिए संघर्ष का आरंभ (1707-12)

दक्षिण में अहमदनगर में औरंगजेब की मृत्यु के साथ ही उसके बेटों के बीच गृह युद्ध छिड़ गया, जो वस्तुतः अनिवार्य था। मुख्य स्पर्धी औरंगजेब का सबसे बड़ा बेटा मुअज्जम, जिसे शाह आलम की उपाधि दी गई थी, और उसका छोटा भाई शाहज़ादा आजम थे। शहंशाह का सबसे छोटा बेटा काम बख्श उसके बुढ़ापे के दिनों में उसका खास चहेता बन गया था, फिर भी उसे कोई गंभीर स्पर्धी नहीं माना जाता था। 1687 में शाह आलम साज़िश करने के आरोप में जेल में डाल दिया गया था। 1695 में उसे रिहा कर दिया गया किन्तु लगभग निर्वासन देकर पेशावर के निकट जमरूद भेज दिया गया, जहां काबुल के सूबेदार की हैसियत से उसे शाहज़ादा अकबर की गतिविधियों पर निगाह रखनी थी, जिसने विद्रोह करके ईरानी दरबार में शरण ली थी। इस प्रकार शाहज़ादा आजम के गद्दी का स्वाभाविक वारिस होने का रास्ता साफ हो गया था। आसन्न संघर्ष की तैयारी के तौर पर आजम ने प्रमुख अमीरों को अपने पक्ष में लाने की कोशिश आरंभ कर दी। लेकिन वह उद्धत और गुस्सैल तथा जल्दबाज स्वभाव का



आदमी था। शाह आलम के प्रति उसके मन में घोर तिरस्कार था। उसे वह बक्काल (बनिया) कहा करता था। लेकिन अपने दबू स्वभाव और फीके व्यवहार के बावजूद शाह आलम ने अपनी फौज के साथ बराबर कूच करते रहकर उसे चुस्त-दुरुस्त बना लिया था और उसमें निष्ठा भर दी थी। उसके निजी सहायक मुनिम खां ने, जो उसका सारा काम-काज संभालता था, नावें आदि भी जुटा ली थीं, ताकि जरूरत पड़ने पर नदियों को पार करते हुए तेजी से आगरा की ओर बढ़ा जा सके। काबुल और लाहौर का तो वह सूबेदार था ही, साथ ही उसका एक बेटा मुल्तान का और दूसरा बंगाल का सूबेदार था। इस प्रकार, शाह आलम को पर्याप्त संसाधन उपलब्ध थे, और आगरा तक, जहां शाह जहां का खजाना सुरक्षित था, पहुंचने का उसका रास्ता दक्षिण में बैठे आजम के रास्ते की अपेक्षा छोटा पड़ता था।

इस प्रकार, साम्राज्य के शक्तिशाली अमीरों के समर्थन, दकन के तपे-परखे योद्धाओं के सहयोग और शाही तोपखाने के रूप में शाहजादा आजम को जो लाभ प्राप्त थे वे वास्तविक से अधिक काल्पनिक ही थे। आजम अर्थाभाव से भी परेशान था। उसके बहुत-से सैनिकों के वेतन बकाया हो गए थे। इसलिए जब उससे पैसे की मांग की जाती थी तो वह रुखाई से जवाब देता था। मुहम्मद अमीन खां चीन और गाज़ीउद्दीन खां जैसे बहुत-से शक्तिशाली अमीरों ने अपने-अपने कारणों से गृह-युद्ध के लिए आगरा जाने से इनकार कर दिया।

जब आजम ग्वालियर पहुंचा तो उसे मालूम हुआ कि शाह आलम तो आगरा पर कब्जा कर चुका है। तेजी से कूच करने के लिए आजम अपने तोपखाने का अधिकतर हिस्सा दकन में ही छोड़ आया था। सो संख्या-बल में बड़ी और बेहतर तौर पर शस्त्र-सज्जित शाह आलम की सेना के खिलाफ आगरा के निकट जाजू नामक स्थान में आजम की लड़ाई (जून 1707) एक तरह का जुआ ही था, जिसमें उसका पांसा उल्टा पड़ा।

आगरा में बहादुर शाह के नाम से सिंहासनारूढ़ होने के बाद शाह आलम 30,000 की सेना के साथ राजस्थान से होकर दकन पहुंचा, और जनवरी 1709 में उसने हैदराबाद के निकट काम बख्श को आसानी से हरा दिया। उसके बाद वह उत्तर भारत लौट गया, जहां 1712 में अपनी मृत्यु के पूर्व डेढ़ साल तक वह बंदा बहादुर के नेतृत्व में सिखों के विद्रोह के दमन में लगा रहा।

बहादुर शाह के पांच साल के छोटे-से शासन-काल में साम्राज्य एकीकृत तो रहा, लेकिन अमीरों की गुटबंदी एक नई ऊंचाई पर पहुंच गई। कुछ तो इस कारण से और कुछ स्पष्ट नीतियां बनाने की बहादुर शाह की अक्षमता की वजह से दरबार अलग-अलग गुटों में बंट गया, जिनमें सत्ता के लिए स्पर्धा तो थी ही, नीतियों के मामले में भी एक-दूसरे से विरोध था। इस कारण से शाही सत्ता और भी कमजोर हुई।



चीन कुलीच खां बादशाह का कृपा-भाजन बन गया। मुहम्मद अमीन खां चीन सर

था। यह परिवार अपनी रूढ़िवादिता के लिए विख्यात था और इस पर औरंगजेब काफ़ी कृपालु था। लेकिन लगता है, इस परिवार को महसूस होता था कि आगे जो परिस्थिति बनेगी उसमें वह असद खां के परिवार के सामने टिक नहीं पाएगा। इसलिए, उसके मन में भी अपना पृथक् प्रभाव-क्षेत्र बनाने की वासना पलने लगी थी। उदाहरण के लिए, जब औरंगजेब की मृत्यु हुई तो गृह युद्ध में भाग लेने के लिए दकन से निकलने में चीन गुट ने बहुत आनाकानी की। यद्यपि आजम ने इस शक्तिशाली परिवार को प्रसन्न करने के लिए चीन कुलीच खां के मनसब को बढ़ाकर 7000/7000 और मुहम्मद अमीन खां के मनसब को 6000/6000 कर दिया तथापि चीन कुलीच खां, जिसे खानदेश की सूबेदारी भी दे दी गई थी, औरंगाबाद से एक-दो पड़ावों से आगे नहीं बढ़ा, और अपने सूबे को संभालने के बहाने वहीं से लौट गया। मुहम्मद अमीन भी उसका साथ छोड़कर औरंगाबाद लौट गया, जहां चीन कुलीच से मिलकर उसने कई जिलों पर कब्जा कर लिया। गाज़ीउद्दीन खां फीरोज़ जंग भी दौलताबाद में पड़ा रहा और आजम के साथ चलने की कोई हरकत नहीं की। फीरोज़ जंग को शत्रु की अपेक्षा मित्र के रूप में अपने पीछे छोड़ना बेहतर समझकर आजम ने उसे औरंगाबाद का सूबेदार और दकन का सर-सूबेदार बना दिया और बहुत-से इनाम भी दिए।

अपनी विजय के बाद आगरा में बहादुर शाह के बादशाह घोषित किए जाते ही अमीरों के बीच का संघर्ष फूटकर बाहर निकल पड़ा। बहादुर शाह ने बड़ी समझदारी के साथ यह नीति अपना ली कि जिन अमीरों ने आजम को समर्थन दिया था वे यदि अविलंब आकर उसके सामने समर्पण कर दें तो उन्हें अपने-अपने पदों पर पुनः प्रतिष्ठित कर दिया जाएगा। इससे उसे बहुत-से अनुभवी आलमगीरी अमीरों की सेवाएं प्राप्त हो गईं, और साथ ही उसके आखिरी प्रतिद्वंद्वी काम बख्श के समर्थन को कम कर देने में भी सहायता मिली। असद खां और जुल्फिकार खां ने बादशाह की खिदमत में पेश होते ही औरंगजेब की वसीयत में दिए गए सुझाव, अपने संबंधों, अनुभवों आदि का हवाला देकर (असद खां के लिए) वज़ीर और (जुल्फिकार के लिए) मीर बख्शी के पदों की मांग पेश कर दी। बहादुर शाह को जुल्फिकार खां को 6000/6000 के मनसब के साथ मीर बख्शी नियुक्त करने में कोई कठिनाई नहीं थी लेकिन वज़ीर के पद का वादा उसने अपने मित्र ओर समर्थक मुनिम खां से कर दिया था। अंत में एक समाधान निकाला गया। मुनिम खां को वज़ीर नियुक्त किया गया और उसके 1500 के दर्जे को बढ़ाकर 7000/7000 कर दिया गया। वह लाहौर का (गैर हाजिर) सूबेदार भी बना दिया गया। इस प्रकार, वह अकबरी दस्तूर समाप्त हो गया जब वज़ीर मुख्य रूप से वित्त-विशेषज्ञ हुआ करता था



और मनसब की दृष्टि से बहुत से अमीर उससे ऊपर होते थे। अब वज़ीर को खाला अमीर और पूरी व्यवस्था की चूल समझा जाने लगा। असद खां को 8000/8000 के अमूतपूर्व दर्जे के साथ वकील-ए-मुतलक बना दिया गया; उसे आसफुदौला के खिताब दिया गया; और नियुक्तियों-तरकियों के सभी कागजात तथा सूबों से प्राप्त खबरों को देखने का अधिकार प्रदान कर दिया गया। मुनिम खां को यह व्यवस्था बहुत उलझी हुई और अपमानजनक लगी, और फलतः शीघ्र ही असद खां को दिल्ली भेजकर पद-स्थापित करने का एक बहाना ढूँढ लिया गया। ज़ुल्फिकार खां को अपने पिता का नायब बना दिया गया, लेकिन राजस्व और दीवानी परवानों तथा सनदों पर वज़ीर की मुहर के बाद आसफुदौला की मुहर लगाने के अलावा सरकार के संचालन में उसका कोई हाथ नहीं रहा। चीन कुलीच और मुहम्मद अमीन खां को भी दकन से वापस बुला लिया गया। उन्हें छोटे-छोटे पद दे दिए गए, जिनसे वे संतुष्ट नहीं थे। इसलिए कुछ दिन बाद चीन कुलीच ने अपना पद त्याग दिया और उसे खान-ए-दौरान की जो उपाधि दी गई थी उसे भी छोड़ दिया। अब वह बेहतर अवसर की प्रतीक्षा में दिल्ली में सेवा-निवृत्त जीवन व्यतीत करने लगा। गाज़ीउद्दीन खां को गुजरात का सूबेदार बना कर दस्तूर के मुताबिक दरबार में पेश हुए बिना ही अपना प्रभार संभालने के लिए भेज दिया गया। 1710 में अहमदाबाद में उसकी मृत्यु हो गई, जिससे चीन गुट और भी कमज़ोर पड़ गया। इस प्रकार अब मुख्य संघर्ष ज़ुल्फिकार खां और मुनिम खां के बीच रह गया, और गुट चीन हाशिए पर चला गया।

### राजपूतों का मामला

ज़ुल्फिकार खां और मुनिम खां के संघर्ष का प्रभाव नीतियों पर भी पड़ा। एक नए ऊँची पदवी वाले अमीर के रूप में मुनिम खां किसी साहसिक या नई नीति के पक्ष में नहीं था। यद्यपि बहादुर शाह अपने पिता की तरह शुद्धाचारणवादी नहीं था, यहां तक कि उस पर शियापंथी रुझान का भी आरोप लगाया गया था तथापि मुनिम खां की ही तरह वह स्वभाव से बहुत सतर्क था और फूंक-फूंक कर कदम रखना चाहता था, चाहे उसका संबंध राजपूतों से हो या मराठों से। जब आजम आगरा की ओर कूच कर रहा था तभी ज़ुल्फिकार खां के सुझाव पर उसने जय सिंह और अजित सिंह को 7000/7000 का दर्जा देकर उन्हें मिर्जा राजा और महाराजा की उपाधियां प्रदान कर दी थीं और दोनों राजाओं से बड़ी-बड़ी सेनाओं के साथ मदद में आ जाने को कहा गया था। अजित सिंह को जोधपुर वापस देने के लिए वार्ता भी आरंभ कर दी गई थी।

बहादुर शाह की राजपूत नीति के दो चरण हैं। 1709 तक चलने वाले पूर्ववर्ती दौर में वह न केवल राजपूतों के संबंध में औरंगजेब द्वारा की गई व्यवस्था को कायम रखने के लिए तत्पर था बल्कि उससे आगे भी जाने को तैयार था। अजित सिंह ने न तो दरबार में हाज़िरी दी थी और न बहादुर शाह की गद्दीनशीनी पर उसे दस्तूर के



मुताबिक बघाई का संदेश भेजा था, और साथ ही उसने जोधपुर पर भी कब्जा कर लिया था। आरोप था कि वहां वह 'इस्लाम के रीति-रिवाजों में बाधा डाल रहा था तथा पुराने मंदिरों का जीर्णोद्धार कर रहा था।' इन तमाम बातों का बहाना बनाकर बहादुर शाह ने अजमेर के रास्ते दकन जाने का फैसला किया। जब शाही सेना अजमेर के निकट पहुंची तो राणा ने समर्पण की पेशकश की, जिसे स्वीकार कर लिया गया। अजित सिंह ने माफी के लिए भी अर्जी दी, जो मंजूर कर ली गई। लेकिन इससे पहले अजित सिंह को जोधपुर के नामज़द फौज़दार के हाथों शिकस्त खानी पड़ी थी। अजित सिंह को 3500/3000 के अपने पुराने मनसब पर प्रतिष्ठित कर दिया गया और उसकी महाराणा की उपाधि कायम रही, लेकिन उसकी राजधानी जोधपुर को शाही नियंत्रण में ही रखा गया। इसके पूर्व, जय सिंह और उसके भाई विजय सिंह के बीच उत्तराधिकार के विवाद का बहाना बनाकर अजमेर के सूबेदार को आंबेर को खालिसा के अधीन लाकर वहां एक मुगल फौज़दार नियुक्त करने का आदेश दे दिया था। आंबेर पहुंचने पर बहादुर शाह वहां तीन दिन रहा और उसका नाम इस्लामाबाद रख दिया। जय सिंह की संपत्ति जब्त कर ली गई और आंबेर राज्य विजय सिंह के हवाले कर दिया गया, जिसने जाजू की लड़ाई में बहादुर शाह का साथ दिया था। इसके अलावा, वहां एक फौज़दार भी नियुक्त कर दिया गया।

लेकिन शीघ्र ही बहादुर शाह और मुनिम खां को इस बात का एहसास हो गया कि वे इस नीति को कायम नहीं रख सकते। जब शाही शिविर नर्मदा तट पर महाबलेश्वर पहुंचा तो अजित सिंह और जय सिंह, जो शाही निर्णय के उलट दिए जाने की आशा में शिविर के साथ चल रहे थे, वहां से भाग निकले और उदयपुर पहुंच गए। वहां उन्होंने मुगलों के संयुक्त प्रतिरोध के लिए महाराणा के साथ एक समझौता किया। लेकिन व्यवहारतः राजपूतों ने कोई समन्वित कार्रवाई नहीं की। जय सिंह ने आंबेर पर फिर से कब्जा कर लिया और अजित सिंह ने मुगल फौज़दार को जोधपुर से भगा दिया। महाराणा ने पुर, मांडल और बिदनूर के परगनों पर, जिन्हें औरंगजेब ने जिज़िया के एवज में उससे ले लिया था, पुनः अधिकार कर लिया। राजपूतों ने डीडवाना को रौंद डाला और सांभर के फौज़दार सैयद हुसैन खां बारहा पर भारी विजय प्राप्त की; लड़ाई में दुर्घटनावश स्वयं सैयद हुसैन बारहा मारा गया। बरसात के बाद अजित सिंह ने 20,000 लोगों की फौज के साथ अजमेर पर घेरा डाल दिया, लेकिन जय सिंह और महाराणा से उसे कोई मदद नहीं मिली। सूबेदार शुजाअत खां के 80,000 रुपए रिश्वत देने पर उसने घेरा उठा लिया, हालांकि शुजाअत खान ने बहादुर शाह को भेजे पत्र में विजय का झूठा दावा किया।

इस बीच बहादुर शाह के काम बख्श पर विजय प्राप्त करने का और राजपूतों को दंडित करने के संकल्प के साथ उसके उत्तर भारत लौटने का समाचार फैल गया।



इससे चौकन्ने होकर राजपूतों ने अपने पुराने मित्र असद खां और शाहजादा अजीमुशान से बीच-बचाव करवाने का प्रयास किया। इन दोनों के सुझाव पर जय सिंह और अजित सिंह को उनके मनसब लौटा दिए गए। असद खां ने, जिसे लाहौर, दिल्ली और अजमेर सूबों का प्रमुख प्रभारी बना दिया गया था, राजाओं के सामने यह प्रस्ताव रखा कि अगर वे सांभर तथा डीडवाना से अपने थाने उठा लें और काबुल तथा गुजरात में सेवा करने को राजी हो जाएं तो उन्हें उनके अपने-अपने वतन वापस दिलाने के लिए उनके नाम सनदें जारी कर दी जाएंगी।

इस प्रकार, एक ओर बहादुर शाह और मुनिम खां तथा दूसरी ओर असद खां और जुल्फिकार खां के बीच राजपूतों से संबंधित नीति को लेकर गहरा मतभेद था। असद खां और जुल्फिकार खां राजपूतों को तुष्ट करना चाहते थे, जिसके लिए वे न केवल राजाओं को उनके वतन वापस देने को तैयार थे बल्कि उन्हें उच्च प्रशासनिक पदों पर फिर से नियुक्त करके उन्हें राज्य में साझीदार बनाने को भी तत्पर थे। उत्तर भारत लौट कर बहादुर शाह और मुनिम खां ने अपने ढंग का एक खास समाधान निकाला। 'कूच के ही दौरान', अर्थात् नियमित दरबार से बाहर ही उन्होंने राजाओं से मुलाकात की और उनके वतन जोधपुर और आंबेर उन्हें लौटा दिए। उन्हें इस शर्त पर वापस लौटने दिया गया कि छह महीने के अंदर अपनी-अपनी सेना लेकर राज्य के चाहे जिस हिस्से में कहा जाए सेवा करने के लिए वे आ जाएंगे। चूंकि बंदा बहादुर के विद्रोह का समाचार बहादुर शाह को मिल चुका था, इसलिए वह उसके खिलाफ राजपूतों का इस्तेमाल करने को उत्सुक था। समझौते में कुछ मिठास घोलने के लिए मुनिम खां ने असद खां का वह प्रस्ताव भी दोहराया जिसमें उन्हें गुजरात और काबुल में नियुक्त करने की बात थी, हालांकि राजपूतों ने इसका अर्थ यह लगाया कि यह उन्हें एक-दूसरे से दूर करके उनसे अलग-अलग निबटने की एक युक्ति है।

काफी ज़ोर-दबाव के बाद पंद्रह महीनों के उपरांत अजित सिंह और जय सिंह अक्टूबर 1711 में बहादुर शाह के दरबार में हाजिर हुए, और उन्हें बंदा के सैनिकों के हमलों से पहाड़ी की तलहटियों की रक्षा के लिए सधौरा में नियुक्त किया गया। तब तक मुनिम खां की मृत्यु हो चुकी थी और सारी सत्ता शाहजादा अजीमुशान के हाथों में गई थी। यद्यपि अजीमुशान राजपूतों का मित्र था तथापि वह जुल्फिकार खां से अलग हो गया था, और आगामी उत्तराधिकार युद्ध में पुराने आलमगीरी अमीरों का समर्थन प्राप्त करने की जद्दोजेहद में लगा हुआ था। स्पष्ट ही आलमगीरी अमीर राजपूतों के प्रति समझौतापरक नीति के पक्ष में नहीं थे। समकालीन लेखक मिर्जा मुहम्मद हारिसी ने, जो इस दृष्टिकोण का पक्षधर था, लिखा है कि राजपूतों के साथ हुआ समझौता 'अच्छी नीति और साथ ही बादशाह की प्रतिष्ठा से असंगत' था। शायद यही कारण है कि 'एक बड़ी सेना' के साथ ढाई वर्षों तक सेवा करने के



उपरांत जय सिंह को चित्रकूट का फौज़दार तथा अजित सिंह को गुजरात में सोरठ का फौज़दार नियुक्त कर दिया गया। ये नियुक्तियां राजपूत राजाओं की अपेक्षाओं से बहुत कम थीं, और फलतः उन्होंने अपने वतन लौटने की दरखास्त दी। दरखास्त इस शर्त पर मंजूर कर ली गई कि वे अपनी-अपनी चौकियां पीछे छोड़ते जाएं।

### मराठा और दकन

बहादुर शाह के शासन-काल में न केवल राजपूत नीति के संबंध में गहरा मतभेद उभर आया, बल्कि मराठों और दकन से संबंधित नीतियों का भी यही हाल हुआ। जब आज्ञम उत्तर भारत की ओर बढ़ रहा था तभी नर्मदा के निकट दोराहा में शाहू को अपने 50-60 अनुगामियों के साथ निकल भागने का मौका दे दिया गया। इसके पीछे एक नीति का भी हाथ था और कुछ अटकल का भी। ऐसा सोचा गया कि शाहू की रिहाई से ताराबाई की स्थिति कमजोर होगी, और शाहू के समर्थकों और विरोधियों के बीच संघर्ष छिड़ जाएगा, जिसमें मराठे इतने व्यस्त हो जाएंगे कि दकन से आज्ञम की अनुपस्थिति के दौरान उन्हें शाही प्रदेशों पर हमले करने की फुर्सत ही नहीं मिलेगी। इसके अलावा, शाहू को संभाजी का अधिकृत उत्तराधिकारी माना जाता था, और ऐसा खयाल था कि उसके साथ मुगलों का कुछ समझौता हो सकता था। समकालीन इतिहासकार खाफी खां के अनुसार, शाहू को जुल्फिकार खां के कहने पर रिहा किया गया, क्योंकि 'शाहू से उसकी बहुत घनिष्ठता थी और काफी दिनों से वह उसके मामले में दिलचस्पी ले रहा था।' लेकिन कतिपय मराठा स्रोतों द्वारा प्रस्तुत इस अनुमान का समर्थन करनेवाला कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है कि आज्ञम शाह ने शाहू के साथ समझौता किया था, जिसके अनुसार उसे शिवाजी का स्वराज्य, दकन के छह सूबों में चौथ और सरदेशमुखी वसूलने का अधिकार एवं कुछ और रियायतें दी गई थीं।

एक लड़ाई में तारा बाई को पराजित करने और सतारा में राजमुकुट धारण करने के बाद शाहू ने मुगलों से अपनी स्थिति की पुष्टि और दकन में चौथ तथा सरदेशमुखी का अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न किया। बहादुर शाह के सिंहासनारोहण के कुछ ही दिन बाद उसने उसे एक बधाई का पत्र भेजा था और साथ ही अपने 'अपराधों' के लिए क्षमा की याचना की थी। बदले में उसे 7000/7000 के दर्जे पर पुनः प्रतिष्ठित करके उससे काम बख्श के खिलाफ सैनिक कार्रवाई में सहायता देने को कहा गया था। शाहू ने स्वयं उपस्थित होने में तो असमर्थता प्रकट की, लेकिन एक बहुत बड़ी सेना के साथ अपने एक विख्यात सरदार नीमाजी सिंधिया को बहादुर शाह के पास भेज दिया था, और उसने बादशाह की मूल्यवान सेवा की थी।

काम बख्श की पराजय (जनवरी 1709) के बाद बहादुर शाह ने दकन के



सर-सूबेदार का पद अपने बेटे अजीमुशशान को देने का प्रस्ताव किया, क्योंकि उस पर बादशाह का प्रेम धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था। लेकिन अजीमुशशान ने पूर्वी सूबे बंगाल, बिहार और उड़ीसा की (गैर-हाजिर) सूबेदारी पसंद की। वह पहले भी इन सूबों का प्रभारी था। दकन के विपरीत, ये क्षेत्र शान्त और भरे-पूरे थे और वहां आमदनी भी अच्छी थी। अतः दकन के सर-सूबेदार का पद अजीमुशशान के बाद सबसे शक्तिशाली व्यक्ति जुल्फिकार खां को सौंप दिया गया। जुल्फिकार खां को दकन के राजस्विक तथा प्रशासनिक मामलों में पूरे अधिकार सौंप दिए गए और साथ ही उसे मीर बख्शी के पुराने ओहदेदार की हैसियत से दरबार में भी मुकम्मल रहने दिया गया। उसके पुराने साथी और शागिर्द दाऊद खां पन्नी को दकन में उसका नायब बना दिया गया। उसे 7000/5000 के दु-अस्या-सीह-अस्या मनसब के साथ ही बीजापुर, बरार और औरंगाबाद की सूबेदारी भी सौंप दी गई। उसका सदर मुकाम पुराने निजाम शाही राज्य अहमदनगर में दौलताबाद शहर के निकट औरंगाबाद को बना दिया गया।

इन रियायतों की बदौलत जुल्फिकार खां मुनिम खां से बहुत अधिक शक्तिशाली हो गया, लेकिन इनकी कोई सार्थकता तभी हो सकती थी जब बहादुर शाह दकन के मामलों में, जिसकी जुल्फिकार को अंतरंग जानकारी थी, उसी के मार्गदर्शन में चलने को तैयार रहता। लेकिन बहादुर शाह जुल्फिकार की स्थिति को इससे आगे और मजबूत बनाने को तैयार नहीं था। काम बख्श की पराजय के बाद जुल्फिकार खां ने शाह के वकील को बादशाह से मिलवाया। उसने एक अर्जी पेश की कि अगर शाह को दकन के छह सूबों में चौथ और सरदेशमुखी का अधिकार दे दिया जाए तो वह उस तबाह देश को फिर से आबाद कर देगा। उधर मुनिम खां ने ताराबाई के वकील की मुलाकात बहादुर शाह से करवाई, जिसने अपने बेटे शिवाजी द्वितीय के नाम एक फरमान जारी करने की दरखास्त की। तारा बाई ने केवल दकन की सरदेशमुखी की मांग की थी और चौथ का कोई जिक्र तक नहीं किया। उसने भी अन्य विद्रोहियों को दवाने और देश में शांति-सुव्यवस्था कायम करने का वचन दिया।

इस मामले को लेकर मुनिम खां और जुल्फिकार खां के बीच भारी विवाद छिड़ गया। बात इसलिए और बिगड़ गई कि मुनिम खां खानदेश और बरार-स्थित पार्सन-घाट को दकन से अलग करके एक अलग सूबा बनाकर अपने बेटे महाबत खां को नियुक्ति, बर्खास्तगी और तबादले के अधिकार के साथ वहां की सूबेदारी देना चाहता था। बहादुर शाह दोनों में से किसी को नाराज नहीं करना चाहता था। उसने दकन के विभाजन के सुझाव का अनुमोदन नहीं किया और साथ ही आदेश दिया कि केवल सरदेशमुखी के लिए सनदें मुनिम खां और जुल्फिकार खां दोनों के अनुरोधों के अनुसार जारी की जाएं। बहादुर शाह का मंतव्य चाहे हो रहा हो, उसके इत फौतले



का नतीजा यह हुआ कि शाहू और तारा बाई दोनों अपने-अपने दावों पर जोर देने के लिए शाही प्रदेशों में लूटपाट मचाने लगे। बहादुर शाह के दकन से रवाना होते ही शाहू ने राजगढ़ के किले से बाहर आकर अपने सरदारों को आदेश दिया कि 'शहंशाह ने मुझे (सर) देशमुखी का अधिकार दिया है, लेकिन चौथ का नहीं। इसलिए आप शाही प्रदेशों पर हमले करे (चौथ का अधिकार देने तक)। शीघ्र ही मराठों की टोलियों ने खानदेश में बुरहानपुर पर हमला करके उसे लूट लिया और सूबेदार मीर अहमद को पराजित करके मार डाला। उन्होंने बीजापुर और अहमदनगर को भी लूटा, और औरंगाबाद के निकट तक पहुंच कर आसपास के इलाकों को लूट लिया। यद्यपि दाऊद खां पन्नी एक बड़ी सेना लेकर मराठों का पीछा करता रहा, तथापि मुगल इन हमलों को रोक सकने में असमर्थ रहे। दाऊद खां पन्नी ने मराठों में विभेद पैदा करने की भी कोशिश की, और राव रंभा निंबलकर, पैमाराज सिधिया, बल्कि चंद्रसेन जाधव तक को अपने पक्ष में ले आया।

अंत में 1711 के आरंभ में दाऊद खां ने शाहू से एक समझौता किया। इसके अनुसार, उसे चौथ और सरदेशमुखी का अधिकार देने का वादा किया गया। लेकिन इनकी राशियों की वसूली मराठा अभिकर्ताओं की बजाए दाऊद खां का नायब हीरामन करनेवाला था, और आगे एकमुश्त रकम मराठों को देनी थी। शाहजादों की जागीरें चौथ और सरदेशमुखी से मुक्त रखी गई थीं।

इस अहदनामे की कोई लिखित पुष्टि नहीं की गई, लेकिन जुल्फिकार खां के सक्रिय समर्थन और बादशाह की मूक सहमति के बिना यह समझौता नहीं किया जा सकता था। ऐसा समझौता आसान भी हो गया था, क्योंकि तब तक मुनिम खां की मृत्यु हो चुकी थी।

लेकिन इस समझौते से भी शांति स्थापित नहीं हो पाई, क्योंकि मराठा सरदार अब किसी के प्रति जवाबदेह नहीं रह गए थे, बल्कि अपनी मर्जी के मालिक बन गए थे और अपनी इच्छानुसार लूट मचाने को हमेशा उद्यत रहते थे। मगर मराठा हमलों के परिमाण में कमी अवश्य आई।

### गुटबंदी में तेजी

बहादुर शाह की गद्दीनशीनी के अगले साल (1708 में) ही सिख विद्रोह आरंभ हो गया था और 1710 के मध्य से तेजी से बढ़ा।